राजा का चौक

राजा का चौक देख रहे हैं न कितना बदल गया है। कौन कह सकता है कि पाँच-छः साल पहले तक यहाँ भुरभुरी मिट्टी और कीचड़ हुआ करती थी। चौक के बीच में ही एक अहाता उखड़ी-धकड़ी ईंटों और मिट्टी की दीवारों से घिरा राजा का हाता कहलाता था। हाते के अन्दर मकान रहे होंगे कोई पच्चीस-तीस। ज्यादातर जुलाहे और सक्के। तीन-चार घर मेहतरों के। इस भुरियल मैदान में सूअर भी डोलते रहते और उनके ही बीच हाते के नंग-धडंग बच्चे मिट्टी में खेलते नजर आते। कुछेक घरों ने एक-एक भैंस का जुगाड़ कर रखा था जो पोखर के परले मैदान पर चरती रहतीं। हाँ, अलबत्ता बकरियाँ कई घरों में जरूर थीं जिनको बच्चे छड़ी लेकर इधर-उधर मैदान वगैरह में चराते दीख जाते। परले मैदान की तरफ लगभग एक-एक डेढ़-डेढ़ बीघा जमीन हर घर के पास थी। वे लोग साग-सब्जी उगाते और शहर जाकर बेच आते।

राजा का चौक यूँ तो शहर से बाहर हुआ करता था, बिल्कुल अलग। लेकिन जब शहर ने बढ़ते-बढ़ते पैर पसारने शुरू कर दिए तो फिर यह हिस्सा भी शहर के एक छोर में शामिल हो गया था। सुनते हैं एक बार गाँव हमीरपुर के राजा साहब ने बुढ़ापे में होने वाली अपनी औलाद के जन्म की खुशी में अपने काम करने वालों को गाँव के बाहर की कुछ जमीन इनाम में दे दी थी। उस समय एक पोखर हमीरपुर की सीमा में हुआ करता था और दूसरा शहर की ओर दूसरे छोर पर। दोनों के बीच लगभग एक-डेढ़ मील की पूरी जमीन उस समय आठ-दस घरों ने हथिया ली। धीरे-धीरे कुछ आपस में शादी-ब्याह के रिश्ते कायम होने पर और कुछ जरूरतों की वजह से; चार-छः परिवार और जुड़ गए। वही अब बढ़ते-बढ़ते एक छोटे-मोटे गाँव का रूप ले चुका था। राजा हमीरपुर का नाम तो अब इस तीसरी पीढ़ी के लोग भूल भी गए होंगे लेकिन शहर के छोर वाला हिस्सा अब भी राजा का चौक और शहर के पोखर नाम की शान टांगे हुए थे। दूसरा पोखर इस बीच सूख कर पट गया था और वहाँ पर जीतू कुम्हार ने अपना चाक लगा रखा था।

छोटा बच्चू और बड़ा बच्चू दोनों ही इस चौक की मिट्टी में लोट-लोटकर जवान हुए थे। इत्तफाक ही था कि दोनों के नाम एक जैसे पड़ गए। बहरहाल छः महीना छोटा फजलू सक्के का बेटा छोटा बन गया और कलुआ का बेटा बड़ा। खूब याद है छोटे को कि चौक के बच्चे दोनों को एक साथ देखते तो बस चालू हो जाते—

बचुआ बचुआ लड़ि पड़े
हंडिया ले के गिर पड़े....

दोनों कुछ तो चिढ़ते और कुछ चिढ़ने का नाटक करते और मिलकर खूब दौड़ाते सबको।

वैसे छोटके और बड़के में दोस्ती भी बहुत थी। पोखर पर काँटा डाले बतियाते रहते दोनो। पास से कोई गुजर भर जाए—मार ढेले पर ढेले, उधर से निकलना हराम कर देते। पोखर पर न जाने क्यों अपना ही कब्जा समझते वे लोग। दो एक भैंस भी अक्सर उस पोखर में से पड़ी रहतीं जिनका वहाँ रहना या न रहना उनकी मर्जी पर ही होता। हालाँकि इसके लिए वे लोगों की गालियाँ भी खूब खाते थे।

गाँव में पहली बार हलचल तब शुरू हुई जब वहाँ एक मौलवी साहब ने डेरा लगाया। लम्बा सुरमई चोगा, खिचड़ी दाढ़ी, आँखों पर चश्मा—मौलवी साहब अजूबा बन गए राजा चौक में। वहाँ के लोगों की अपनी तरह की जिन्दगी थी—एक जैसी चलती। उसमें उनका यहाँ आना सबके लिए बड़ा जोश भरा और एक नयापन लाने वाला था।

पोखर के पास सबसे पहले छोटे और बड़े बच्चू ही मिल गए उन्हें। उन्हें देखते ही दोनों अपना कांटा-डंडा छोड़कर उसी ओर भागे।

''अबे छोटे, देख कौन आया है? दाढ़ी वाला।'' और छोटे ने आदत के मुताबिक फौरन एक ढेला उठा लिया हाथ में।

बच्चों को हाथ में ढेला लिए देख कुछ परेशान से हुए मौलवी साहब।

''अरे बेटा—क्या नाम है तुम्हारा?''

''क्यों? का बात हैगी। काहे पूछ रहे हो तुम नाम?'' कुछ सशंकित हुआ छोटा।

''अबे नाम पूछते हैं। बता दे।''

''बच्चू।''

''और तुम्हारा?''

''बच्चू।''

''मजाक नहीं करते बेटा। हम यहाँ तबलीक के लिए आए हैं शहर से। अच्छी-अच्छी बातें बताएँगे तुम्हें—खुदा के बारे में।''

''काहे के लिए आए हैं? तबदीक!!''

छोटे ने कुछ न समझ कर बड़े को कोहनी मार कर पूछा।

''अरे हम दूनों के नाम बच्चू हैं। ये छोटा बच्चू और हम बड़ा बच्चू।''

बड़े को कुछ मजा आ रहा था मौलवी की बतों में।

''अच्छा तो बच्चू। आगे क्या है बच्चू के।''

''आगे-पीछे हाथी-घोड़ा। अबे कहि दिया कि बच्चू और क्या होगा।''

''अच्छा, बाप का नाम क्या है।''

''छोटका. के बाप फजलू और हमारा बाप कलुआ।''

''फजलू। अच्छा-अच्छा। फजल खां होगा पूरा नाम। बेटा फिर तो तुम बच्चू खां हुए, बच्चू खां। खुदा रहम करे तुम पर।''

बड़का एक मिनट तक तो मौलवी साहब का मुँह ताकता रहा फिर बोल उठा–

''अबे मार साले को। बच्चू खां बना रिया है। फिर मैं का बनूँगा।''

एक टंगड़ी मारी बड़के ने उन्हें और फिर दोनों भाग गए मैदान की ओर।

मौलवी साहब खुदा के पक्के बन्दे थे। ढूँढ़-ढांढ कर अपने काम के आठ-दस परिवार उन्होंने निकाल लिए। यूँ भी वे पूरे चौक के मेहमान थे। इसीलिए किसी ने कोई ऐतराज नहीं किया। चलो पड़ा रहेगा बेचारा। खुदा का बन्दा है–चार बातें अच्छी ही बताएगा।

मौलवी साहब हाथ के खुले थे। गाहे-बगाहे लोगों की रुपये-पैसे से मदद करते। कुछ दिनों बाद हाते के पीछे की जमीन कच्ची ईंटों से घेर ली थी। ऊपर से छप्पर डालकर अपना रहने का ठिकाना भी बना लिया उन्होंने।

साल भर करीब बीत गया। एक दिन उन्होंने वहाँ अपना कमरा पक्का बनवाने की बात कही। किसी को क्या बुरा लगता।

''भइया पैसा है–खुशी से बनवाओ। तुम खुदा के आदमी हो। खुदा पैसा देगा–तुम खरच करोगे। पक्का करवाओ चाहे महलिया बनवाओ–'' और वहाँ मिट्टी से चिनी छोटी-सी चारदीवारी और उसके भीतर एक कमरा बन गया। बड़ी कोशिश की मौलवी साहब ने चौक के बच्चों को घेर कर कुछ पढ़ाने-लिखाने की लेकिन ज्यादा चला नहीं पाए। बच्चों को अपने ही कामों से फुरसत नहीं थी। कहने को वे सुअर चराते या भैंस-बकरियाँ हाँकते घूमते लेकिन इसके साथ ही जो सैर-सपाटा उन्हें मिलता उसका मजा ही दूसरा था। तभी एक घटना घट गई। जाड़े के दिन। कड़ाके की सर्दी थी। उस दिन सुबह से बदली छाई थी। ऐसा लगता कि सूरज निकलना चाहता है बादलों को छेद कर लेकिन रह-रहकर उसकी कोशिश बेकार हो रही थी।

''जे सूरज क्यों नहीं निकल रहा है?''

''का पता।''

''चल सूरज निकालेंगे''–और आठ-दस, छोटे-बड़े बच्चे मौलवी साहब की चारदीवारी पर पैर लटका कर लाइन से बैठ गए।

"नाम जी....नाम जी सूज्ज निकार
अपनी डुकरिया जाड़े में मार।"

"अबे ऐसे नहीं। मैं बताऊँ–" बड़े बचुआ ने शरीफ के सर पर एक चपत लगाई। फिर उसने एक नीम की पतली डंगाल तोड़ी और उसे इस तरह से हाथ में पकड़ लिया मानो किसी जुलूस में झंडा उठाए हुए हो।

"अब बोलो–
राम जी राम जी सूज्ज निकार।
अपनी डुकरिया जाड़े में मार।"

उसके हाथ में झंडा देखकर सब बच्चे जोश में भर गए और साथ-साथ चीखने लगे। अच्छा-खासा खेल हो गया उनका।

मौलवी साहब ने शोर-सुनकर दो-तीन बार मना किया कि यह सब वाहियात बातें न चिल्लाओ। फिर भी जब बच्चे चीखते ही रहे तो गुस्से में आकर उन्होंने मुँडेर से बच्चों को उतर जाने को कहा। इसके साथ ही दोनों हाथों से बच्चों को धक्का देकर उन्होंने उतारना चाहा कि एक टांग ऊपर रखे तथा दूसरी लटकाकर बैठा शरीफ मुँह के बल नीचे गिर पड़ा। आगे के दो दाँत टूट गए और पूरा मुँह खून से भर गया।

शरीफ का बाप वहीद शहर के लिए चलने ही वाला था। आजकल किसी दुकान में नौकरी कर ली थी उसने। जल्दी जाकर दुकान खोलनी होती और सफाई करनी पड़ती। तभी शरीफ का मुँह देखकर वह गुस्से से भर गया। हाते के सभी लोग जुड़ आए।

"निकाल बाहर करो इस हरामजादे को चौक से। यहाँ रहने के लिए जगह दिया–सब आराम दिया और अब हमारे ही बालकों को मारेगा।"

"का बिगाड़ रहा था ये तुम्हारा?"

"कुछ नहीं कलुआ काका–हम लोग सूरज निकारबे को गा रये कि इनने धक्का मार दिया।"

"अब बालकों के गाने पर, खेलने पर भी रोक है गई....। चल निकल बाहर...."

और सचमुच उन सबने मिलकर उन्हें राजा के चौक से बाहर निकाल कर ही दम लिया। पूरे पोखर के आगे तक खदेड़ आए उन्हें वे लोग।

•

लेकिन यह बात तो काफी पहले की है। बड़का बच्चू जवान हो रहा था। उसके बाप कलुआ ने बहुत कोशिश की कि वह भी 'म्युनिसिपिलटी' में मुलाजिम हो जाए मगर हैड जमादार ने इसके लिए कलुआ से पाँच सौ रुपया माँगा। कलुआ खुद भी म्युनिसिपिलटी में जमादार था लेकिन हैड जमादार ने इसका भी लिहाज नहीं किया। अब इतना एकदम कहाँ से लाता कलुआ। शहर के सरदारजी का काफी कर्ज था उस पर। अभी बचुआ की बहन की शादी में हजार रुपया लेना पड़ा था उसे। अब तो उनके यहाँ भी बरातियों के दिमाग बिगड़ गए हैं। गोश्त-रोटी और

शराब से कम बात नहीं करते। पूरे दो सूअर उसकी शादी में काम आ गए।

फिर बचुआ की शादी। तीन सौ वहाँ लड़की के बाप ने धरा लिए। उसके बाद जब वह बचुआ के लिए म्युनिसिपिलटी में जुगाड़ न लगा सका तो उसने साफ-साफ कह दिया—"बचुआ, अब अपना इन्तजाम करो। गौना से पहिले अपनी रोटी आप कमाओ...." और बचुआ ने रोटी कमाने के लिए रिक्शा हाथ में पकड़ा। लेकिन शहर में रिक्शा चलाने से ज्यादा उसका मन वहाँ जुआ खेलने में लगने लगा। स्टेशन पर रिक्शा खड़ा कर एक दिन वह अपने साथियों के साथ पत्ते फेंटने में मगन था कि पुलिस घेर कर ले गई उन सबको। महीना-पन्द्रह दिन बाद छूटकर आया तो बाप ने फौरन गौना करा दिया उसका और वह बहू को ले आया।

दूसरे दिन सवेरे ही छोटा बचुआ आया और सीधा अन्दर चला गया।

"भाबी—ओ भाबी...."

नई नवेली दुल्हन। उसने फौरन अपना पल्ला सर से आगे खींच लिया।

"भाबी। हम तो ये कहे आय हैं कि तुम्हारा बचुआ बड़का है तो हम छोटे बचुआ हैं। सो हम दूनों को एक बरोबर समझो।"

बहू ने मुँह ऊपर उठाया और खिल्ल से मुस्करा दी। गठीला बदन, गोरा रंग। माथे पर चकता लाल बेंदा। छोटा भीतर तक भींज गया।

"अबे चल हरामी की औलाद।" धप्प मारी बड़े ने उसकी पीठ पर।

"भाग जा यहाँ से। क्यों बिगाड़ रहा है अपनी भाबी को"—और सचमुच हाथ पकड़ कर वह उसे बाहर ले आया।

"ले बीड़ी पी और दफा हो जा यहाँ से"—और खुद घुस गया घर के अन्दर।

•

हाँ, बात इस जगह के बदल जाने की थी। दरअसल हुआ यह कि जब से हमीरपुर से शहर को जोड़ने वाली सड़क राजा चौक से होकर पक्की बन गई तो इसके मानो भाग ही जाग गए। सड़क के रास्ते ट्रक-बसें वगैरह के आने-जाने का एक सिलसिला शुरू हो गया। देखते-देखते राजा के चौक के करीब तीन-चार चाय और पान-सिगरेट की दुकानों के खोखे बन गए। जहाँ-तहाँ बच्चे अपने चने-मुरमुरे की टोकरियाँ लिए जम गए। एकदम रौनक हो गई चौक में।

इसी बीच एक दिन एक शहरी बाबू बढ़िया कपड़े पहिने, आँखों में काला चश्मा लगाए वहाँ आया। उसने वहाँ की पूरी जगह का जायजा लिया। शहर और राजा के चौक के बीच बाकायदा एक कालोनी बनने वाली थी—सो उसी सिलसिले में वह आया था। उस दिन वह धूमधाम कर चला गया।

महीना-दो-महीना बाद वह फिर आया। अबकी उसके साथ एक बुजुर्गवार भी थे। हाते के लोगों को उन्होंने इकट्ठा किया।

"आप लोगों को इस जगह का बरोबर पैसा दिया जाएगा। यह जगह अब सरकार की है। हमने यह जमीन पचास हजार में ख़रीद ली है।"

"ये कैसे हो सकता है साब। हमारे पुरखे यहाँ पै बसे रहे। हम कोई आज

के थोड़े हैं।"

"यह जमीन सरकार की नाय है बाबू साहेब। हमारे बाप-दादों को बखसीस में मिली है ये जमीन। खून-खराबा हो जाएगा अगर जोर-जबरदस्ती करेगा कोई।"

"अब ये तो आप सरकारी आदमी से पूछो कि राजा चौक की जमीन कैसे बेची गई हमको। आपकी जमीन है तो कागज हैं आपके पास इसके?"

"ई कागज-बागज हम कुछ नहीं जानते। पुराने लोगों की जबान पर काम होता था कागजों पर नहीं। मुँह से निकली बात दस कागजों से बढ़कर होती थी...."

"बहरहाल आप लोगों को मैं बिना किसी कागज के भी बरोबर पैसा देने को तैयार हूँ। अब आप जानो सरकार जाने...."

और वे दोनों बाबू साहब फटफटिया पर चढ़ कर उड़ लिए।

उस रात चौक में कोई नहीं सो पाया। पूरे हाते में जगार जैसी हो गई। तय हुआ कि कुछ लोग शहर जाएँ और कुछ नहीं तो अपने नेता जी से मिलें। वे ही कुछ करेंगे। नेताजी दलित समाज के अध्यक्ष थे और अच्छी पहुँच थी उनकी ऊपर के लोगों में।

नेताजी ने काफी दौड़-भाग की। तीन-चार लोगों को लेकर हमीरपुर गाँव भी गए। पता चला कि कुंवर वीरेन्द्र नारायण जिन्होंने यह जमीन अपने कामगारों को दे दी थी, उनके पुत्र कुंवर सत्येन्द्र नारायण अब शहर में ही रहते थे। गाँव की जमीन नौकरों-चाकरों के भरोसे थी। उनके दो लड़कों में बड़ा तो डॉक्टर था और विलायत में ही बस गया था। छोटे ने अपना एक कारखाना लगा लिया था शहर में।

खैर—फिर दस-बारह लोग मिलकर कुंवर सत्येन्द्र नारायण के पास गए। नेताजी ने अपना परिचय दिया। सत्येन्द्र नारायण उसी समय सबेरे की टहल से वापस लौटे थे। सफेद बुर्राक धोती और मलमल का कुर्ता। सफेद बाल और बड़ी-बड़ी सफेद मूंछें उनके गोरे चेहरे को और उजला-सा बनाती लग रही थीं। खासी उमर के बाद भी शरीर अच्छा भारी और चेहरा रोब-दाब से भरा-पूरा था।

"नेताजी! कौन नेता हो?" अपनी सुनहली मूंठ की छड़ी घुमाते हुए उनके माथे पर बल पड़ गए।

"क्या काम है आप लोगों को हमसे।"

"मैं नेताजी हूँ जी—राजवीर सिंह—यहाँ दलित समाज का अध्यक्ष।"

"अच्छा? कहिये।"

"देखिए जी ये लोग आपकी परजा हैं। मालिक लोग हैं जी आप इनके। आपके पिताजी इन लोगों को थोड़ा-बहुत जगह दे दिए थे कि रहो वहाँ और कमाओ-खाओ। अब शहर के कुछ लोग कहते हैं कि इनकी जमीन सरकारी हो गई और...."

"मालिक, नाप-जोख करबे को गए थे लोग चौक में। हम लोग तो हमेशा-हमेशा आप लोग की सेवा किए हैं मालिक...."

गफूरा अपने कंधे के अंगोछे को संभालता हुआ बेसब्र होकर बोल पड़ा था।

"हुजूर कागजन की बात कहि रहे थे वे लोग। हम लोग कागज-पत्तर क्या जानि सकें। ये तो आपहि लोग जानते हो...."

"मुझे बोल लेने दो कलुआ," नेताजी ने उसे बीच में बोलने से रोका।

"आप जानते हैं कुंवर साहब कि यह सब पुराने लोग हैं। कब से रहते आ रहे हैं चौक में। इन्हें बेदखल करने का कोई कानून नहीं है। कोई जैसे जमीन ले सकता है इनकी हुजूर। बस, आप थोड़ा मदद करें। आप ही के पिताजी दिए थे इन्हें जगह।"

कुंवर जी की समझ में सारा चक्कर आ गया। बड़ा घाघ है यह नेताजी भी। ससुर, कल का रजुआ आज राजवीर सिंह बना बहस लगा रहा है। ले लिए होंगे सौ-दो-सौ इन चौक वालों से भी तभी इतनी बहसबाजी कर रहा है। दो मिनट तक सोचते रहे वह।

"जमीन-जायदाद का काम हमारा छोटा बेटा अशोक देखता है। मैं पूछूँगा--सारी मालूमात करूँगा, तभी कुछ कह सकता हूँ।"

"फिर मालिक, कब आएँ हम।"

"आ जाइए कल-परसों। और—इतने लोगों की क्या जरूरत है। अरे भाई तुम—क्या नाम है तुम्हारा, नेताजी--तुम्हीं आ जाओ। तुम कानून भी ज्यादा जानते हो। तुम्हीं समझा देना इन लोगों को भी।"

तीसरे दिन नेताजी गए। कोठी पर नौकरों ने बताया कि सब लोग हफ्ता भर को बाहर चले गए हैं। इधर राजा चौक से दस-बारह लोग रोज ही नेताजी के घर धरना सा दे रहे थे। खैर एक दिन मुलाकात हो ही गई उनकी। लौटकर जब वापस आए तो कलुआ, गफूर, छोटा, बड़ा बचुआ छः सात जने रास्ता देख रहे थे उनका।

"आ गए? बात हो गई?"

"हो तो गई बात।"

"का तय कर आए।"

"बात तो बहुत कायदे से हुई। बाकायदा चाय पिलाई तब बात करी।"

"अरे भाई, अब आपको चाय नहीं पिलाएँगे तो का हमें पिलाएँगे।"

"अरे इलेक्शन भी तो लड़े हो तुम एमल्ले का। हारि गये तो का। जानते हैं हम तुमको कि तुम भी खटिया खड़ी कर देओगे।"

"ये तो है। इसीलिए सब साफ-साफ बात करी हमसे। असल में बाप की सुनता नहीं है कोई। कहते थे कि बड़ा बेटा तो विलायत में है। उसे कोई मतलब नहीं। छोटा बेटा अशोक ने कारखाना लगाया था। मोटर गाड़ियों के पुर्जे बनते थे। अब उसी को और बढ़ा दिया है। बड़ी मशीनें बनाने लगा है वो अब। सो साफ कह दिया कि उसे पैसा की जरूरत थी। उनका दोस्त सेठ दुर्गासरन का बेटा। अरे वही जिनकी कोठी शेरवाली कोठी कहलाती है। उसने समझा दिया कि राजा चौक की अपनी जमीन बेच डारो। लगाओ अपने कारखाने में। सो भइया, सीधी-सच्ची

बात कि उसने तो मुकद्दमा करि दिया है कि राजा चौक की जमीन पर तुम लोग जोर-जबरदस्ती से कब्जा किए हो। जमीन खरीदी है उन्हीं बाबू दुर्गासरन ने वही मुकद्दमा लड़ा रहे हैं।''

सब सन्न रह गए। किसी के मुँह से कोई बोल नहीं फूटा। एक अनकहा सन्नाटा खिंच गया एक कोने से दूसरे कोने तक। उसे तोड़ा बचुआ—बड़के बचुआ ने।

''अब?''

''अब क्या! दो-चार दिन में नोटिस मिलेगा। जाओ मुकद्दमा की तैयारी करो।

''ये कैसे हो सकता है नेताजी! सरकार ने तो कहि दिया कि जो पुरानी जमीन जिसके कब्जा में है, चाहे कागजों में दर्ज हो या नहीं हो वह जमीन जोतने बारे की है।''

''सोई तो मुकद्दमा है। जाओ अदालत में साबित करो कि जमीन बाप-दादों के जमाने से तुम्हारे पास है।''

राजा चौक वालों की हर साँस मुकदमे की बाबत ही सोच रही थी। एक अजीब विवशता से सबके मन-दिमाग बँध गए थे। हालाँकि हाथ-पैर सभी के चल रहे थे। रोजमर्रा के काम हर रोज की तरह हो रहे थे। कलुआ, फजल, गफूर वगैरह का ख्याल था कि पैसे इकट्ठा करके मुकदमे की तैयारी भी करते रहें और एक बार फिर मालिक लोग की खुशमद-दरामद करें। नोटिस उन्हें मिल चुके थे। चौक के लड़कों का कहना था कि किसी को वहाँ घुसने ही मत दो। जो वहाँ आए, पहले ही हाथ-पैर तोड़कर भगा दो।

जैसे-तैसे मुकद्दमा लड़ा। लेकिन तहसीलदार ने साफ बता दिया था कि कागजों में यह जमीन अब तक कुंवर सत्येन्द्र नारायण के नाम दर्ज होती रही है। हाँ, चौक के कुछ लोग बटाई पर काम करते रहे हैं। कहने को एक वकील चौक वालों ने भी किया था। बोला भी था वह—लेकिन न मालूम क्या हुआ कि फैसला चौक वालों के हक में नहीं हुआ।

करीब दो-ढाई महीने बाद। तीन-चार लोग शहर से फिर आए नाप-जोख करने। उन्हें देखते ही सबके सब मानो चिपट पड़े उन पर। मार ढेले पर ढेला, लहूलुहान कर दिया उन लोगों को। सरदारी तो अब भी बड़ा बच्चू ही कर रहा था इस मारपीट में। छोटका भी कारखाने नहीं गया। करीम, जुबेर, घासी, सबके सब तमाशा देखते रह गए। कोई काम पर नहीं गया। खूब बदला लिया मुकदमे में हारने का। बाद में सब पेट पकड़-पकड़ कर खूब हँसे। कई दिन तक चौक में किस्से चलते रहे कि कैसे सबके सब भागे थे। रस्सी, पैमाना तो थे ही, जूता चप्पल तक छोड़ गए।

दुर्गासरन जी ने यह सब सुना। वे गहरे सोच में पड़ गए। दुर्गासरन इस पूरे इलाके के सम्भ्रान्त और जाने-माने आदमी। खासा बड़ा बिजनेस फैला है चारों ओर। सीमेंट और लोहे के थोक व्यापारी। धंधा जोरों पर था। बड़े-बड़े अफसरों से दोस्ती थी। मालूम हुआ कि जल्दी ही मास्टर प्लान आने वाला है। प्लान में शहर की बढ़त हमीरपुर गाँव की ओर होगी। एक सरकारी और एक गैर सरकारी कालोनी बनने की बात भी थी। इस पूरे इलाके में राजा चौक से ज्यादा मौके की जमीन और क्या होगी। एक बड़ा होटल और फिर एक सिनेमा-हाल। यूँ भी नम्बर दो का बेशुमार पैसा था। इस बहाने ही खप जाता और काम भी बढ़ निकलता। लेकिन यह तो अच्छी मुसीबत खड़ी हो गई। किस तरह से तो अशोक और उसके बाप सत्येन्द्र नारायण को पटाया। इस जमीन के लिए सरकारी अफसरों के पास दौड़-भाग की, मुकदमेबाजी की। तहसीलदार, नायब तहसीलदार, पटवारी—सबके सब मुँह खोले खड़े थे। सबको भरा-पूरा। इन छोटे लोगों को छेड़ना भी आसान नहीं। फौरन मामला पालीटिकल बन जाता है। सारे करे-धरे पर पानी फिर जाएगा। खैर देखेंगे....।

और सचमुच, दुर्गासरन जी की मेहनत रंग लाई। चौक बदलने लगा। लेकिन यह बदलना कोई एक दिन में थोड़ी हो जाता है। कोई जादू की छड़ी तो है नहीं कि घुमाई और वीराने में सुदामा का महल खड़ा हो गया।

हुआ यह कि एक दिन कलुआ अपने परिवार को लेकर शहर चला आया। आने से पहले एक दिन हाते के बाहर अचानक धांय....धांय....एक धमाका हुआ। पता चला कि हथगोला फूटा है। उन दिनों कलुआ की शराब भी बहुत बढ़ गई थी। रोज शहर से एक अद्धा लेकर आता। धमाका होते ही उसने बाहर निकलकर चीखना शुरू कर दिया—

"अब इस चौक में रहना भी दुश्वार है। जान के गाहक बन गए हैं सब। अबे हरामजादो....शहर में दंगा होता है तो हमें इससे का मतलब है। शहर की हवा क्या हियां भी ले आए हो। अरे, हम दो-चार घर के लोग हैं—रहने दोगे कि नहीं। आपस में खूं खच्चर करिबे का इरादा है का...." पूरे चौक में मानो उसकी आवाज गूँज रही थी।

और तीसरे दिन ही पुटलियों में अपना सामान बाँधे टीन कनस्तर लादकर वह शहर चला गया।

सब हैरान। आखिर यह धमाका आया कहाँ से। टुकड़े अभी तक इधर-उधर पड़े थे। और दंगा!! क्या कह गया कलुआ। यह सब तो आज तक चौक वालों की जुबान पर नहीं आया था।

फिर छोटका एक दिन खबर लाया कि बड़का बचुआ शहर में उसी के यहाँ मुलाजिम हो गया है जो चौक में होटल बना रहा है। चौकीदारी करता है वह गेट पर और वहीं क्वार्टर में रहता है। कलुआ को भी पास ही में एक कोठरी दिला दी है।

बड़का बचुआ यूँ ही एक दिन आ गया चौक में लोगों से मिलने। लौटते समय रास्ते में छोटका मिल गया उसे।

"कहो छोटका....कैसे हो?"

"मैं बच्चू खां हूँ। छोटका नहीं। ठीक से नाम लो।"

"ये कब से है गए तुम। अबे छोटुआ....का आज फैक्टरी में मालिक से तकरार करके आ रये हो।"

बड़के के स्वर में परिहास था।

"तुम शहर जाकर इत्ते बड़े आदमी हो सकते हो कि घासी की और जीतू के लौंडे की नौकरी लगवा रये हो। मोहना पहले ही तुम्हारे पीछे चला गया कि तुम उसे मुसपिलटी में जमादार लगवा दोगे। और मैं यहाँ पर रहकर बच्चू खां भी नहीं हो सकता...."

और हाथ छिटक कर चला गया वह आगे।

"साला कमीन....दिमाग खराब हो गया है।"

बड़ा बच्चू चला गया वापस।

ताज्जुब कि कुछ दिनों बाद फिर लोग आए। नाप-जोख हुई और होटल बनने का काम शुरू हो गया लेकिन अबकी सब चुपचाप वहाँ से हट गए और अपना टाट-कमंडल उठा मैदान के दूसरी तरफ आ गए। इधर चौक के मकानों पर बुलडोजर चला और उधर नई झोपड़ियाँ पड़ गईं। चार-छः महीने गजब की रौनक रही। फिलहाल वहाँ के लोगों को अच्छी मजूरी मिल रही थी सो सब खुश थे। आज तो काम मिल रहा है—कल की कल देखी जाएगी।

छोटा बच्चू बहुत गुमसुम हो गया था। शाम गए फैक्टरी से वापस आता लेकिन मैदान की तरफ जाने से पहले घंटों बैठा रहता वहीं चौक के पास नीम के नीचे। हर रोज उठ रही इमारत को ताकता रहता। होटल तीन मंजिला था। होटल के सामने बगीचा बनने वाला था। पीछे तालाब। उसके भी चारों ओर फुलवारी और बगीचा। बीच में कहीं-कहीं रंगीन बैंच। कोनों में बड़ी-बड़ी चिकनी सफेद मूर्तियाँ। करीब-करीब नंगी औरतों की। जहाँ कभी धूल उड़ती हो, कीचड़ होती हो—सूअर लोटते हों वहाँ बड़ा खूबसूरत महल खड़ा हो जाए। लेकिन इससे भी ज्यादा जो राजा चौक बदला—वह तो आप सोच ही नहीं सकते।

घर की ओर जाते हुए छोटका इमारत के रास्ते से होकर गुजरता—फिर पोखर पार करता—फिर मैदान और तब अपनी झोपड़ी में घुसता तो उसे लगता मानों वह आसमान से रेंगता-रेंगता नीचे उतरा है। और अपने बिल में घुस गया है। चौक के हाते के अन्दर भी उसका मकान तकरीबन ऐसा ही था लेकिन तब ऐसा क्यों नहीं लगता था? राजा चौक में रोज घूमती मोटरें, ट्रक, स्कूटर—उन पर सजे सजाये साहब लोग। उसे सचमुच अब अपने बदन पर चीथड़ों के लटकने का एहसास होने लगा था। मैदान में अपने घर की ओर मुड़ते ही उसके दिमाग में एक जबरदस्त बदबू भरी घुटन होने लगती। उसके हाथ, पैर, दिल, दिमाग, आँखें, नाक....क्या कुछ भी अब पहले जैसा नहीं रह गया था। उसे खुद पर ताज्जुब होता कभी-कभी।

होटल की भरपूर सजावट भी हो चुकी थी। अब कुछ दिनों के बाद होटल शुरू होने वाला था। वह खाना खा रहा था कि उसकी बीवी ने यह खबर सुनाई—

"दो-तीन दिन बाद फीता कटेगा। सुना कोई मनिस्टर आ रये हैं। सब कह रहे थे कि मिठाई बँटेगी सबन को...."

उसके मुँह का स्वाद न जाने कैसा हो गया है—

"हरामजादी, मिठाई का ही ख्याल है तुझको। इसी के चक्कर में सब्जी कड़वी करके धर दी है—"

और दो धौल उसकी पीठ पर दिए उसने गद्द से। उसकी बीवी बिलबिला कर रह गई इस अचानक मारपीट से और फिर लगी चिल्लाने। उसके चिल्लाने पर कोई ध्यान दिए बगैर वह उठकर बाहर आ गया।

दूसरे दिन फैक्टरी से लौटते वक्त एक झोले में न जाने क्या लेकर आया था वह। फजल बाहर बैठा बीड़ी फूँक रहा था। उसने पूछा भी कि क्या है थैले में तो बोला—

"कुछ नहीं....औजार हैं काम के" और भीतर झोला टांड के पीछे इस तरह छुपाकर रख दिया कि किसी की उस पर नजर न पड़े।

वह दिन राजा चौक के लोगों के लिए एक अजीब तरह की हलचल लिए हुए था। दिन भर गाड़ियों का खासा अच्छा मेला जैसा लगा रहा। कहीं-कहीं पुलिस दीख जाती। शहर के राजा चौक तक सड़क बन ही चुकी थी। जगह-जगह बिजली के खम्भे लग गए थे। ढेरों छोटी-छोटी चाय-पान की दुकानें वहाँ धड़ाधड़ खुल गई थीं। राजा का चौक अब एकदम सजा सजाया था—साफ-सुथरा। पुराना चौक और उसका सारा कूड़ा-करकट मैदान की तरफ। कल मिनिस्टर साहब आएँगे—होटल शुरू होगा—मिठाई बंटेगी। सबको मालूम था।

शाम बीत गई थी और रात हो चली थी। दिन भर की दौड़-भाग के बाद चौक अब शान्त था। उसका नया-पुराना सब काली रात के सन्नाटे में घिर चुका था।

छोटा बच्चू अपनी बात के मुताबिक अभी तक पोखर पर बैठा था। उसका झोला उसके पास ही रखा था। कुछ देर वह बैठा रहा। फिर उठा, हाथ की कंकड़ी पोखर के पानी में दे मारी और झोला उठाकर चल दिया। वह होटल की ओर जा रहा था, पिछवाड़े की ओर जहाँ तालाब था। इसी ओर कमरों की खिड़कियाँ भी खुलती थीं। पिछवाड़े की ओर पहुँचकर उसने अपना झोला खोला और हाथ डाला ही था उसमें कि पीछे से किसी ने अचानक उसका हाथ पकड़ लिया।

"क्या कर रहा है बे यहाँ पर...."

और फिर अचानक आवाज बदल गई थी।

"तू छोटका? तू का कर रहा है यहाँ!"

छोटका ने मुँह उठाकर देखा। बड़का बच्चू खड़ा था। खाकी पैंट और कमीज में—साहब बना हुआ। बगल में डंडा।

बेसाखता न चाहते हुए भी छोटका के मुँह से निकल पड़ा।

"छोटका नहीं—बच्चू खां कहो।"

बड़का ने उसका हाथ छोड़ दिया और हँसते हुए बोला–

"चल आज बता ही दे तू। कब से हो गया तू बच्चू खां। वरना जाने न दूँगा तुझे आज...."

छोटका के होंठ भिंच गए।

"मैं छोटका बच्चू से बच्चू खां हो गया जा दिन से, बताऊँ! जा दिन तुम होटल वारे की नौकरी में चौक छोड़ि गए। जा दिन से, जब रसूल सेठ गुलाबचंद के कारखाने के बाहर मारा गया–और बताऊँ!! जा दिन से जब सेठ नसीर अहमद ने जिन्दा रखने की खातिर अनाज-पानी से मदद करी और अपने कारखाने में नौकरी दी। अब आय गई समझ में।"

"चल समझ गया। अब जे बता कि इतनी रात गए यहाँ का कर रहा है।"

उसका स्वर गम्भीर था अब हालाँकि मुस्कराहट बनी हुई थी।

"तू क्यों पूछ रहा है। तुमसे का मतलब?"

"मैं डूटी कर रहा हूँ या पै। हैड चौकीदार हूँ मैं होटल में।"

उसने थोड़ा तनकर जवाब दिया और ऊपर से नीचे तक छोटका पर एक नजर डाली।

"अच्छा।" कुछ देर चुप रहा फिर बोला छोटका–

"मैं आग लगा रहा हूँ इस होटल में। जे होटल हमारी छाती पर बना है। बेईमानी से बना है। दगा करी लोगों ने हमसे।"

वह अचानक उत्तेजित हो उठा।

"मैं आग लगा दूँगा बड़का...." और सचमुच उसने एक गोला निकाल लिया झोले से और उठाकर दीवार के अन्दर जोर से फेंक दिया। भीतर एक खम्भे से टकराया वह। धांय....धांय....की आवाज गूँज उठी और तड़....तड़....तड़ सैकड़ों चिनगारियाँ बिखर गई चारों ओर।

इससे पहले कि बड़का कुछ समझ पाता उसने छोटके के हाथ में एक और वैसा ही गोला देखा।

अब बड़के ने आव देखा न ताव....तड़ातड़ छोटके के सर पर डंडा बरसाना शुरू कर दिया। कुछ देर तक तो छोटका डंडे सहता रहा फिर उसने गोला वहीं डाल दिया और फेंटे से चाकू निकाल लिया।

बड़का इसके लिए तैयार न था। उसने लाठी उसके चाकू पर मारी। चाकू दूर जा गिरा। इससे पहले कि छोटका चाकू पर लपकता, बड़के ने दौड़कर चाकू उठा लिया। छोटके ने अब बिना सोचे-समझे फौरन गोला उठाकर बड़के के ऊपर दे मारा। इससे पहले ही बड़का छोटके के ऊपर चाकू फेंक चुका था और एक साथ दो चीखें गूँज गईं।

लगातार धड़धड़ाते धमाकों और चीखों की आवाज से लोग जाग गए थे। कल के उत्सव की वजह से होटल में ठहरे सभी लोग भाग-भाग कर बाहर आ गए। पुराने चौक तक भी धमाकों की आवाज पहुँच चुकी थी और वहाँ से भी लोग आकर इकट्ठा होने लगे थे।

चौक के लोगों ने दोनों को पहचान लिया। छोटका और बड़का दोनों ही

खून से लथपथ। अनग-अलग धाराओं में खून बह रहा था। दोनों को हिला-डुलाकर देखा लोगों ने।

"मर गया बड़का।"

"छोटका की साँस अभी चल रही है।"

"यह तो हमारा आदमी था—बच्चू लाल।" दुर्गासरन भी अब वहाँ पहुँच चुके थे। "यह दूसरा कौन है?"

"बच्चू है ये भी छोटका बच्चू।"

"बच्चू खां नाम है साहब, इसका।"

"अच्छा? मुसलमान था यह! हैं!! पूरी तैयारी थी बदमाश की....चाकू भी ....हथगोले भी। हे भगवान्! यह तो पूरा होटल उड़ा देता।"

दुर्गासरन अन्दर चले गए पुलिस अधिकारियों को फोन करने। उन्होंने बताया कि चौक पर साम्प्रदायिक दंगा हो गया। बस्ती वालों ने होटल पर हमला कर दिया। उनका बच्चू लाल चौकीदार मारा गया।

अधिकारियों ने उन्हें आश्वासन दिया और फौरन पुलिस भेजने की बात कही।

सेठ दुर्गासरन ने चैन की साँस ली। इन बदमाशों को मैदान की तरफ से भी हटाना होगा। अच्छा हुआ बच्चू लाल ने रास्ता साफ कर दिया। अब आगे आसानी होगी।